**कृष्ण कुमार यादव**

# सावन मौसम के उल्लास का उत्सवधर्मी पर्व है कजरी

## लोक संस्कृति की लय है कजरी

भारतीय परम्परा का प्रमुख आधार तत्व उसकी लोक संस्कृति है। यहाँ लोक कोई एकाकी धारणा नहीं है बल्कि इसमें सामान्य-जन से लेकर पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, ऋतुएं, पर्यावरण, हमारा परिवेश और हर्ष -विषाद की सामूहिक भावना से लेकर श्रृंगारिक दशाएं तक शामिल हैं। 'ग्राम-गीत' की भारत में प्राचीन परंपरा रही है। लोकमानस के कंठ में, श्रुतियों में और कई बार लिखित-रूप में यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रवाहित होते रहते हैं। पं. रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में-'ग्राम गीत प्रकृति के उद्गार हैं। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है। छन्द नहीं, केवल लय है। लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है। ग्रामीण मनुष्यों के स्त्री-पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति मानो गान करती है। प्रकृति का यह गान ही ग्राम गीत है....।' इस लोक संस्कृति का ही एक पहलू है- कजरी। ग्रामीण अंचलों में अभी भी प्रकृति की अनुपम छटा के बीच कजरी की धारायें समवेत फूट पड़ती हैं। यहाँ तक कि जो अपनी मिटटी छोड़कर विदेशों में बस गए, उन्हें भी यह कजरी अपनी ओर खींचती है। तभी तो कजरी अमेरिका, ब्रिटेन इत्यादि देशों में भी अपनी अनुगूंज छोड़ चुकी है। सावन के मतवाले मौसम में कजरी के बोलों की गूंज वैसे भी दूर-दूर तक सुनाई देती है -

रिमझिम बरसेले बदरिया,<br>
गुईयां गावेले कजरिया<br>
मोर सवरिया भीजै न<br>
वो ही धानियां की कियरिया<br>
मोर सविरया भीजै न।

वस्तुतः 'लोकगीतों की रानी' कजरी सिर्फ गायन भर नहीं है बल्कि यह सावन मौसम की सुन्दरता और उल्लास का उत्सवधर्मी पर्व है। प्रतीक्षा, मिलन और विरह की अविरल सहेली, निर्मल और लज्जा से सजी-धजी नवयौवना की आसमान छूती खुशी, आदिकाल से कवियों की रचनाओं का श्रृंगार कर, उन्हें जीवंत करने वाली 'कजरी' सावन की हरियाली बहारों के साथ जब फिज़ा में गूंजती है तो देखते ही बनता है। प्रतीक्षा के पट खोलती लोकगीतों की श्रृंखलाएं इन खास दिनों में गजब सी

हलचल पैदा करती हैं, हिलोर सी उठती है, श्रृंगार के लिए मन मचलता है और उस पर कजरी के सुमधुर बोल! सचमुच 'कजरी' सबकी प्रतीक्षा है, जीवन की उमंग और आसमान को छूते हुए झूलों की रफ्तार है। शहनाईयों की कर्णप्रिय गूंज है, सुर्ख लाल मखमली वीर बहूटी और हरियाली का गहना है, सावन से पहले ही तेरे आने का एहसास! महान कवियों और रचनाकारों ने तो कजरी के सम्मोहन की व्याख्या विशिष्ट शैली में की है। मौसम और यौवन की महिमा का बखान करने के लिए परंपरागत लोकगीतों का भारतीय संस्कृति में कितना महत्व है-कजरी इसका उदाहरण है। चरक संहिता में तो यौवन की संरक्षा व सुरक्षा हेतु बसन्त के बाद सावन महीने को ही सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। सावन में नयी ब्याही बेटियाँ अपने पीहर वापस आती हैं और बगीचों में भाभी और  बचपन की सहेलियों संग कजरी गाते हुए झूला झूलती हैं-

घरवा में से निकले ननद-भउजईया

जुलम दोनों जोड़ी साँवरिया।

छेड़छाड़ भरे इस माहौल में जिन महिलाओं के पति बाहर गये होते हैं, वे भी विरह में तड़पकर गुनगुना उठती हैं ताकि कजरी की गूँज उनके प्रीतम तक पहुँचे और शायद वे लौट आयें-

सावन बीत गयो मेरो रामा

नाहीं आयो सजनवा ना।

.....

भादों मास पिया मोर नहीं आये

रतिया देखी सवनवा ना।

यही नहीं जिसके पति सेना में या बाहर परदेश में नौकरी करते हैं, घर लौटने पर उनके सांवले पड़े चेहरे को देखकर पत्नियाँ कजरी के बोलों में गाती हैं -

गौर-गौर गइले पिया

आयो हुईका करिया

नौकरिया पिया छोड़ दे ना।

एक मान्यता के अनुसार पति विरह में पत्नियाँ देवि 'कजमल' के चरणों में रोते हुए गाती हैं, वही गान कजरी के रूप में प्रसिद्ध है-

सावन हे सखी सगरो सुहावन

रिमझिम बरसेला मेघ हे

सबके बलमउवा घर अइलन

हमरो बलम परदेस रे।

नगरीय सभ्यता में पले-बसे लोग भले ही अपनी सुरीली धरोहरों से दूर होते जा रहे हों, परन्तु शास्त्रीय व उपशास्त्रीय बंदिशों से रची कजरी अभी भी उत्तर प्रदेश के कुछ अंचलों की खास लोक संगीत विधा है। कजरी के मूलतः तीन रूप हैं- बनारसी, मिर्जापुरी और गोरखपुरी कजरी। बनारसी कजरी अपने अक्खड़पन और बिन्दास बोलों की वजह से अलग पहचानी जाती है। इसके बोलों में अइले, गइले जैसे शब्दों का बखूबी उपयोग होता है, इसकी सबसे बड़ी पहचान 'न' की टेक होती है-

बीरन भइया अइले अनवइया

सवनवा में ना जइबे ननदी।

.....

रिमझिम पड़ेला फुहार

बदरिया आई गइले ननदी।

विंध्य क्षेत्र में गायी जाने वाली मिर्जापुरी कजरी की अपनी अलग पहचान है। अपनी अनूठी सांस्कृतिक परम्पराओं के कारण मशहूर मिर्जापुरी कजरी को ही ज्यादातर मंचीय गायक गाना पसन्द करते हैं। इसमें सखी-सहेलियों, भाभी-ननद के आपसी रिश्तों की मिठास और छेड़छाड़ के साथ सावन की मस्ती का रंग घुला होता है-

पिया सड़िया लिया दा मिर्जापुरी पिया

रंग रहे कपूरी पिया ना

जबसे साड़ी ना लिअईबा

तबसे जेवना ना बनईबे

तोरे जेवना पे लगिहें मजूरी पिया

रंग रहे कपूरी पिया ना।

विंध्य क्षेत्र में पारम्परिक कजरी धुनों में झूला झूलती और सावन भादो मास में रात में चौपालों में जाकर स्त्रियाँ उत्सव मनाती हैं। इस कजरी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह पीढ़ी दर पीढ़ी चलती हैं और इसकी धुनों व पद्धति को नहीं बदला जाता। कजरी गीतों की ही तरह विंध्य क्षेत्र में कजरी अखाड़ों की भी अनूठी परम्परा रही है। आषाढ़ पूर्णिमा के दिन गुरू पूजन के बाद इन अखाड़ों से कजरी का विधिवत गायन आरस्वस्थ परम्परा के तहत इन कजरी अखाड़ों में प्रतिद्धन्दता भी होती है। कजरी लेखक गुरु अपनी कजरी को एक रजिस्टर पर नोट कर देता है, जिसे किसी भी हालत में न तो सार्वजनिक किया जाता है और न ही किसी को लिखित रूप में दिया जाता है। केवल अखाड़े का गायक ही इसे याद करके या पढ़कर गा सकता है-

कइसे खेलन जइबू
सावन में कजरिया
बदरिया घिर आईल ननदी
संग में सखी न सहेली
कईसे जइबू तू अकेली
गुंडा घेर लीहें तोहरी डगरिया।

बनारसी और मिर्जापुरी कजरी से परे गोरखपुरी कजरी की अपनी अलग ही टेक है और यह 'हरे रामा' और 'ऐ हारी' के कारण अन्य कजरी से अलग पहचानी जाती है-

हरे रामा, कृष्ण बने मनिहारी
पहिर के सारी, ऐ हारी।

सावन की अनुभूति के बीच भला किसका मन प्रिय मिलन हेतु न तड़पेगा, फिर वह चाहे चन्द्रमा ही क्यों न हो-

चन्दा छिपे चाहे बदरी मा
जब से लगा सवनवा ना।

विरह के बाद संयोग की अनुभूति से तड़प और बेकरारी भी बढ़ती जाती है। फिर यही तो समय होता है

इतराने का, फरमाइशें पूरी करवाने का-

पिया मेंहदी लिआय दा मोतीझील से

जायके साइकील से ना

पिया मेंहदी लिअहिया

छोटकी ननदी से पिसईहा

अपने हाथ से लगाय दा

कांटा-कील से

जायके साइकील से।

म्भ होता है। धोतिया लइदे बलम कलकतिया

जिसमें हरी- हरी पतियां।

ऐसा नहीं है कि कजरी सिर्फ बनारस, मिर्जापुर और गोरखपुर के अंचलों तक ही सीमित है बल्कि इलाहाबाद और अवध अंचल भी इसकी सुमधुरता से अछूते नहीं हैं। कजरी सिर्फ गाई नहीं जाती बल्कि खेली भी जाती है। एक तरफ जहाँ मंच पर लोक गायक इसकी अद्भुत प्रस्तुति करते हैं वहीं दूसरी ओर इसकी सर्वाधिक विशिष्ट शैली 'धुनमुनिया' है, जिसमें महिलायें झुक कर एक दूसरे से जुड़ी हुयी अर्धवृत्त में नृत्य करती हैं।

मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ के कुछ अंचलों में तो रक्षाबन्धन पर्व को 'कजरी पूर्णिमा' के तौर पर भी मनाया जाता है। मानसून की समाप्ति को दर्शाता यह पर्व श्रावण अमावस्या के नवें दिन से आरम्भ होता है, जिसे 'कजरी नवमी' के नाम से जाना जाता है। कजरी नवमी से लेकर कजरी पूर्णिमा तक चलने वाले इस उत्सव में नवमी के दिन महिलायें खेतों से मिट्टी सहित फसल के अंश लाकर घरों में रखती हैं एवं उसकी साथ सात दिनों तक माँ भगवती के साथ कजमल देवी की पूजा करती हैं। घर को खूब साफ-सुथरा कर रंगोली बनायी जाती है और पूर्णिमा की शाम को महिलायें समूह बनाकर पूजी जाने वाली फसल को लेकर नजदीक के तालाब या नदी पर जाती हैं और उस फसल के बर्तन से एक दूसरे पर पानी उलचाती हुई कजरी गाती हैं। इस उत्सवधर्मिता के माहौल में कजरी के गीत सातों दिन अनवरत् गाये जाते हैं।

कजरी लोक संस्कृति की जड़ है और यदि हमें लोक जीवन की ऊर्जा और रंगत बनाये रखना है तो इन तत्वों को सहेज कर रखना होगा। कजरी भले ही पावस गीत के रूप में गायी जाती हो पर लोक रंजन

के साथ ही इसने लोक जीवन के विभिन्न पक्षों में सामाजिक चेतना की अलख जगाने का भी कार्य किया है। कजरी सिर्फ राग-विराग या श्रृंगार और विरह के लोक गीतों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसमें चर्चित समसामयिक विषयों की भी गूँज सुनायी देती है। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान कजरी ने लोक चेतना को बखूबी अभिव्यक्त किया। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान कजरी ने लोक चेतना को बखूबी अभिव्यक्त किया। आजादी की लड़ाई के दौर में एक कजरी के बोलों की रंगत देखें-

केतने गोली खाइके मरिगै
केतने दामन फांसी चढ़िगै
केतने पीसत होइहें जेल मां चकरिया
बदरिया घेरि आई ननदी।

1857 की क्रान्ति पश्चात जिन जीवित लोगों से अंग्रेजी हुकूमत को ज्यादा खतरा महसूस हुआ, उन्हें कालापानी की सजा दे दी गई। अपने पति को कालापानी भेजे जाने पर एक महिला 'कजरी' के बोलों में गाती है-

अरे रामा नागर नैया जाला काले पनियां रे हरी
सबकर नैया जाला कासी हो बिसेसर रामा
नागर नैया जाला काले पनियां रे हरी
घरवा में रोवै नागर, माई और बहिनियां रामा
से जिया पैरोवे बारी धनिया रे हरी।

स्वतंत्रता की लड़ाई में हर कोई चाहता था कि उसके घर के लोग भी इस संग्राम में अपनी आहुति दें। कजरी के माध्यम से महिलाओं ने अन्याय के विरूद्ध लोगों को जगाया और दुश्मन का सामना करने को प्रेरित किया। ऐसे में उन नौजवानों को जो घर में बैठे थे, महिलाओं ने कजरी के माध्यम से व्यंग्य कसते हुए प्रेरित किया-

लागे सरम लाज घर में बैठ जाहु
मरद से बनिके लुगइया आए हरि

पहिरि के साड़ी, चूड़ी, मुंहवा छिपाई लेहु
राखि लेई तोहरी पगरइया आए हरि।

सुभाष चन्द्र बोस ने जंग-ए-आजादी में नारा दिया कि- ‘‘तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा, फिर क्या था पुरूषों के साथ-साथ महिलाएं भी उनकी फौज में शामिल होने के लिए बेकरार हो उठीं। तभी तो कजरी के शब्द फूट पड़े-

हरे रामा सुभाष चन्द्र ने फौज सजायी रे हारी
कड़ा-छड़ा पैंजनिया छोड़बै, छोड़बै हाथ कंगनवा रामा
हरे रामा, हाथ में झण्डा लै के जुलूस निकलबैं रे हारी।

महात्मा गाँधी आजादी के दौर के सबसे बड़े नेता थे। चरखा कातने द्वारा उन्होंने स्वावलम्बन और स्वदेशी का रूझान जगाया। नवयुवतियाँ अपनी-अपनी धुन में गाँधी जी को प्रेरणास्त्रोत मानतीं और एक स्वर में कजरी के बोलों में गातीं-

अपने हाथे चरखा चलउबै
हमार कोऊ का करिहैं
गाँधी बाबा से लगन लगउबै
हमार कोई का करिहैं।

कजरी में ’चुनरी’ शब्द के बहाने बहुत कुछ कहा गया है। आजादी की तरंगें भी कजरी से अछूती नहीं रही हैं -

एक ही चुनरी मंगाए दे बूटेदार पिया
माना कही हमार पिया ना
चद्रशेखर की बनाना, लक्ष्मीबाई को दर्शाना

लड़की हो गोरों से घोड़ां पर सवार पिया।
जो हम ऐसी चुनरी पइबै, अपनी छाती से लगइबे
मुसुरिया दीन लूटै सावन में बहार पिया
माना कही हमार पिया ना।
पिया अपने संग हमका लिआये चला
मेलवा घुमाये चला ना
लेबई खादी चुनर धानी, पहिन के होइ जाबै रानी
चुनरी लेबई लहरेदार, रहैं बापू औ सरदार
चाचा नेहरू के बगले बइठाये चला
मेलवा घुमाये चला ना
रहइं नेताजी सुभाष, और भगत सिंह खास
अपने शिवाजी के ओहमा छपाये चला
जगह-जगह नाम भारत लिखाये चला
मेलवा घुमाये चला ना

उपभोक्तावादी बाजार के ग्लैमरस दौर में कजरी भले ही कुछ क्षेत्रों तक सिमट गई हो पर यह प्रकृति से तादातम्य का गीत है और इसमें कहीं न कहीं पर्यावरण चेतना भी मौजूद है। इसमें कोई शक नहीं कि सावन प्रतीक है सुख का, सुन्दरता का, प्रेम का, उल्लास का और इन सब के बीच कजरी जीवन के अनुपम क्षणों को अपने में समेटे यूं ही रिश्तों को खनकाती रहेगी और झूले की पींगों के बीच छेड़-छाड़ व मनुहार यूँ ही लुटाती रहेगी। कजरी हमारी जनचेतना की परिचायक है और जब तक धरती पर हरियाली रहेगी कजरी जीवित रहेगी। अपनी वाच्य परम्परा से जन-जन तक पहुँचने वाले कजरी जैसे लोकगीतों के माध्यम से लोकजीवन में तेजी से मिटते मूल्यों को भी बचाया जा सकता है।

**कृष्ण कुमार यादव : भारत सरकार में वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी। साथ ही सामाजिक, साहित्यिक और समसामयिक मुद्दों से संबंधित विषयों पर प्रमुखता से लेखन करने वाले साहित्यकार, विचारक और ब्लॉगर। लेखन-विधा- लघुकथा, कहानी, कविता, लेख/निबंध एवं बाल कविताएँ। विभिन्न विधाओं में अब तक कुल 7 पुस्तकें प्रकाशित**